ॐ

परलोक और पुनर्जन्म

[तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५ से]

लेखक—

जयदयाल गोयन्दका

श्रीपरमात्मने नमः

परलोक और पुनर्जन्म

परलोक और पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदूधर्मकी खास सम्पत्ति है । जैन और बौद्धमत भी एक प्रकारसे हिंदूधर्मकी ही शाखा माने जा सकते हैं; क्योंकि वे इस सिद्धान्तको मानते हैं; इसलिये वे हिंदूधर्मके अन्तर्गत हैं । मुसल्मान और ईसाईमत इस सिद्धान्तको नहीं मानते; परंतु थियॉसफी सम्प्रदायके उद्योगों तथा प्रेतविद्या (Spiritualism) के चमत्कारोंने (जिसका इधर कुछ वर्षोंमें पाश्चात्य जगत्‌में काफी प्रचार हुआ है) इस ओर लोगोंका काफी ध्यान आकृष्ट किया है और अब तो हजारों-लाखोंकी संख्यामें योरोप और अमेरिकाके लोग भी ईसाई होते हुए भी परलोकमें विश्वास करने लगे हैं । हमारे भारतवर्षका तो बच्चा-बच्चा इस सिद्धान्तको मानता और उसपर अमल करता है । यही नहीं, यह सिद्धान्त हमारे जीवनके प्रत्येक अङ्गके साथ सम्बद्ध

हो गया है, हमारा कोई धार्मिक कृत्य ऐसा नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपसे परलोकसे सम्बन्ध न हो और हमारा कोई धार्मिक ग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपसे परलोक एवं पुनर्जन्मका समर्थन न करता हो। इधर तो कई स्थानोंमें ऐसी घटनाएँ भी प्रकाशमें आयी हैं जिनमें अबोध बालक-बालिकाओंने अपने पूर्वजन्मकी बातें कही हैं, जो जाँच-पड़ताल करनेपर सच निकली हैं।

आत्माकी उन्नति तथा जगत्‌में धार्मिक भाव, सुख-शान्ति और प्रेमके विस्तारके लिये तथा पाप-तापसे बचनेके लिये परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना आवश्यक भी है। आज संसारमें, विशेषकर पाश्चात्त्य देशोंमें आत्महत्याओंकी संख्या जो दिनोंदिन बढ़ रही है—आये दिन लोगोंके जीवनसे निराश होकर अथवा असफलतासे दुःखी होकर अपमान एवं अपकीर्तिसे बचनेके लिये अथवा इच्छाकी पूर्ति न होनेके दुःखसे डूबकर, फाँसी खाकर, जलकर, विषपान करके अथवा गोली खाकर प्राणत्याग करनेकी बातें पढ़ी, सुनी और देखी जाती हैं—उसका एकमात्र प्रधान कारण आत्माकी अमरतामें तथा परलोकमें अविश्वास है।

यदि हमें यह निश्चय हो जाय कि हमारा जीवन इस शरीरतक ही सीमित नहीं है, इसके पहले भी हम थे और इसके बाद भी हम रहेंगे, इस शरीरका अन्त कर देनेसे हमारे कष्टोंका अन्त नहीं हो जायगा, बल्कि इस शरीरके भोगोंको भोगे बिना ही प्राणत्याग कर देनेसे तथा आत्महत्यारूप नया घोर पाप करनेसे हमारा भविष्य जीवन और भी अधिक कष्टमय होगा, तो हम कभी आत्महत्या करनेका साहस न करें। अत्यन्त खेदका विषय है कि पाश्चात्त्य जडवादी सभ्यताके सम्पर्कमें आनेसे यह पाप हमारे आधुनिक शिक्षाप्राप्त नवयुवकोंमें भी घर कर रहा है और आजकल ऐसी बातें हमारे देशमें भी देखी सुनी जाने लगी हैं। हमारे शास्त्रोंने आत्महत्याको बहुत बड़ा पाप माना है और उसका फल सूकर, कूकर आदि अन्धकारमय योनियोंकी प्राप्ति बतलाया है। श्रुति कहती है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ईशोपनिषद् ३)

अर्थात् 'वे असुरसम्बन्धी लोक [अथवा आसुरी योनियाँ] आत्माके अदर्शनरूप अज्ञानसे आच्छादित हैं। जो कोई भी आत्माका हनन करनेवाले लोग हैं, वे मरनेके अनन्तर उन्हींमें जाते हैं।'

संसारमें जो पापोंकी वृद्धि हो रही है—झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार एवं अनाचार बढ़ रहे हैं, व्यक्तियोंकी भाँति राष्ट्रोंमें भी परस्पर द्वेष और कलहकी वृद्धि हो रही है, बलवान् दुर्बलोंको सता रहे हैं, लोग नीति और धर्मके मार्गको छोड़कर अनीति और अधर्मके मार्गपर आरूढ़ हो रहे हैं। लौकिक उन्नति और भौतिक सुखको ही लोगोंने अपना ध्येय बना लिया है और उसीकी प्राप्तिके लिये सब लोग यत्नवान् हैं, विलासिता और इन्द्रियलोलुपता बढ़ती जा रही है, भक्ष्याभक्ष्यका विचार उठता जा रहा है, जीभके स्वाद और शरीरके आरामके लिये दूसरोंके कष्टकी तनिक भी परवा नहीं की जाती, मादक द्रव्योंका प्रचार बढ़ रहा है, बेईमानी और घूसखोरी उन्नतिपर है, एक दूसरेके प्रति लोगोंका विश्वास कम होता जा रहा है, मुकद्दमेबाजी बढ़ रही है, अपराधोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, दम्भ और

पाखण्डकी वृद्धि हो रही है—इन सबका कारण यही है कि लोगोंने वर्तमान जीवनको ही अपना जीवन मान रक्खा है। इसके आगे भी कोई जीवन है, इसमें उनका विश्वास नहीं है। इसीलिये वे वर्तमान जीवनको ही सुखी बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। 'जबतक जियो, सुखसे जियो, कर्जा लेकर भी अच्छे-अच्छे पदार्थोंका उपभोग करो। मरनेके बाद क्या होगा, किसने देख रक्खा है।'* इसी सर्वनाशकारी मान्यताकी ओर आज प्रायः सारा संसार जा रहा है। यही कारण है कि वह सुखके बदले अधिकाधिक दुःखमें ही फँसता जा रहा है। परलोक और पुनर्जन्मको न माननेका यह अवश्यम्भावी फल है। आज हम इसी परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी कुछ चर्चा करते हैं। और इस सिद्धान्तको माननेवालोंका क्या कर्तव्य है—इसपर भी विचार कर रहे हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपसे हमारे सभी शास्त्रोंने समर्थन किया है। वेदोंसे लेकर

* यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ (चार्वाक)

आधुनिक दार्शनिक ग्रन्थोंतक सभीने एक स्वरसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है। स्मृतियों, पुराणों तथा महाभारतादि इतिहास-ग्रन्थोंमें तो इस विषयके इतने प्रमाण भरे हैं कि उन सबको यदि संगृहीत किया जाय तो एक बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। इसके लिये न तो अवकाश है और न इसकी उतनी आवश्यकता ही प्रतीत होती है। प्रस्तुत निबन्धमें उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति, योगसूत्र आदि कुछ थोड़े-से चुने हुए प्रामाणिक ग्रन्थोंमेंसे ही कुछ प्रमाण लेकर इस सिद्धान्तकी पुष्टि की जायगी और युक्तियोंके द्वारा भी इसे सिद्ध करनेकी चेष्टा की जायगी।

कठोपनिषद्का नाचिकेतोपाख्यान इस सिद्धान्तका जीता-जागता प्रमाण है। उपनिषद्का पहला मन्त्र ही परलोकके अस्तित्वको सूचित करता है। नचिकेताने जब देखा कि उसके पिता वाजश्रवस ऋत्विजोंको बूढ़ी और निकम्मी गायें दानमें दे रहे हैं, तो उससे न रहा गया। वह सोचने लगा कि ऐसी गायें देनेवालेको तो आनन्दरहित लोकोंकी प्राप्ति होती है—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥*
(१।१।३)

अतएव उसने पिताको उस कामसे रोकनेका प्रयत्न किया, पर इसमें वह सफल न हो सका। इसके बाद उसके पिताने कुपित होकर जब उसे मृत्युको सौंप देनेकी बात कही तो वह प्रसन्नतापूर्वक पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य कर यमलोकमें चला गया। इसके बाद उसके और यमराजके बीचमें जो संवाद हुआ है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यमराजने उसे तीन वर देनेको कहे। उनमेंसे तीसरा वर माँगता हुआ नचिकेता यमराजसे यह प्रश्न करता है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
(१।१।२०)

---

* जो जल पी चुकी हैं, जिनका ग्रास खाना समाप्त हो चुका है, जिनका दूध भी दुह लिया गया है और जिनमें बछड़ा देनेकी शक्ति भी नहीं रह गयी है, उन गौओंको दान करनेसे वह दाता आनन्दशून्य लोकोंको जाता है।

अर्थात् मरे हुए मनुष्यके विषयमें जो यह शङ्का है कि कोई तो कहते हैं 'मरनेके अनन्तर आत्मा रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'—इस सम्बन्धमें मैं आपसे उपदेश चाहता हूँ, जिससे मैं इस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मेरे माँगे हुए वरोंमें यह तीसरा वर है।

यमराजने इस विषयको टालना चाहा और नचिकेता-से कहा कि तू कोई दूसरा वर माँग ले; क्योंकि यह विषय अत्यन्त गूढ़ है और देवताओंको भी इस विषयमें शङ्का हो जाया करती है। नचिकेता कोई सामान्य जिज्ञासु नहीं था। अतः विषयकी गूढ़ताको सुनकर उसका उत्साह कम नहीं हुआ, बल्कि उसकी जिज्ञासा और भी प्रबल हो उठी। वह बोला कि इसीलिये तो इस विषयको मैं आपसे जानना चाहता हूँ, क्योंकि इस विषयका उपदेश करनेवाला आपके समान और कौन मिलेगा। इसपर यमराजने पुत्र-पौत्र, हाथी-घोड़े, सुवर्ण, विशाल भूमण्डल, दीर्घ-जीवन, इच्छानुकूल भोग, अनुपम रूप लावण्यवाली स्त्रियाँ तथा और भी बहुत-से भोग, जो मनुष्यलोकमें दुर्लभ हैं, उसे देने चाहे, परंतु नचिकेता अपने निश्चयसे नहीं टला। वह बोला—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत-

त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव

तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥

(१ । १ । २६)

'हे यमराज ! ये भोग 'कल रहेंगे या नहीं'—इस प्रकारके सन्देहसे युक्त हैं अर्थात् अस्थिर हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजको जीर्ण कर देते हैं । यह सारा जीवन भी स्वल्प ही है । अतः आपके वाहन (हाथी-घोड़े) और नाच-गान आपहीके पास रहें, मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है ।'

नचिकेताके इस आदर्श निष्कामभाव और दृढ़ निश्चयको देखकर यमराज बहुत ही प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाꣳश्च कामा-

नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।

नैताꣳसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो

यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥

(१ । २ । ३)

'हे नचिकेता ! तूने प्रिय अर्थात् पुत्र, धन

आदि इष्ट पदार्थोंको और प्रियरूप—अप्सरा आदि लुभानेवाले भोगोंको असार समझकर त्याग दिया और जिसमें अधिकांश मनुष्य डूब (फँस) जाते हैं, उस धनिकोंकी निन्दित गतिको तूने स्वीकार नहीं किया। धन्य है तेरी निष्ठा !'

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥
(१ । २ । ६)

'जो मूर्ख धनके मोहसे अंधे होकर प्रमादमें लगे रहते हैं, उन्हें परलोकका साधन नहीं सूझता। यही लोक है, परलोक नहीं है ऐसा माननेवाला पुरुष बारंबार मेरे चंगुलमें फँसता है (जन्मता और मरता है)।'

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥
(१ । २ । ९)

'हे प्रियतम ! सम्यक् ज्ञानके लिये कोरा तर्क करनेवालोंसे भिन्न किसी शास्त्रज्ञ आचार्यद्वारा कही हुई यह बुद्धि, जिसको तुमने पाया है, तर्कद्वारा प्राप्त नहीं होती। अहा ! तेरी धारणा बड़ी सच्ची है। हे नचिकेता ! हमें तेरे समान जिज्ञासु सदा प्राप्त हों।'

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः॥
(१।२।११)

'हे नचिकेता ! तूने बुद्धिमान् होकर भोगोंकी परम अवधि, जगत्की प्रतिष्ठा, यज्ञका अनन्त फल, अभयकी पराकाष्ठा, स्तुत्य और महती गति तथा प्रतिष्ठाको देखकर भी उसे धैर्यपूर्वक त्याग दिया। शाबाश !'

उपर्युक्त वचनोंसे इस विषयकी महत्ता तथा उसे जाननेके लिये कितने ऊँचे अधिकारकी आवश्यकता है, यह बात द्योतित होती है।

इस प्रकार नचिकेताकी कठिन परीक्षा लेकर और उसे उसमें उत्तीर्ण पाकर यमराज उसे आत्माके स्वरूपके सम्बन्धमें उपदेश देते हैं। वे कहते हैं—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(१।२।१८)

'यह नित्य चिन्मय आत्मा न जन्मता है, न मरता है, यह न तो किसी वस्तुसे उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है (अर्थात् न तो यह किसीका कार्य है, न कारण है, न विकार है, न विकारी है) । यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान, अनादि), शाश्वत (सदा रहनेवाला, अनन्त) और पुरातन है तथा शरीरके विनाश किये जानेपर भी नष्ट नहीं होता ।'*

उपर्युक्त वर्णनसे आत्माकी अमरता सिद्ध होती है । वे फिर कहते हैं—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ हन्ति न हन्यते ॥
(१।२।१९)

---

* यही मन्त्र कुछ हेर-फेरसे गीतामें भी आया है । (देखिये २।२०)

'यदि मारनेवाला आत्माको मारनेका विचार करता है और मारा जानेवाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मारता है और न मारा जाता है।'*

आगे चलकर यमराज उन मनुष्योंकी गति बतलाते हैं, जो आत्माको बिना जाने हुए ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। वे कहते हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

(२।२।७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावरभाव (वृक्षादि योनि) को प्राप्त होते हैं।'

ऊपरके मन्त्रसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है।

गीतामें भी परलोक तथा पुनर्जन्मका प्रतिपादन करनेवाले अनेक वचन मिलते हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ

---

* यह मन्त्र भी कुछ शब्दोंके हेर-फेरसे गीतामें पाया जाता है (देखिये २।१९)

उद्धृत किये जाते हैं। गीताके दूसरे अध्यायमें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥
(२।१२)

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
(२।१३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।' चौथे अध्यायमें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

'हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।'

गीतामें स्वर्गादि लोकोंका भी कई जगह उल्लेख आता है; पुनर्जन्म, परलोक, आवृत्ति-अनावृत्ति, गतागत (गमनागमन) आदि शब्द भी कई जगह आये हैं। छठे अध्यायके ४१-४२ वें श्लोकोंमें योगभ्रष्ट पुरुषके दीर्घकालतक स्वर्गादि लोकोंमें निवासकर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें अथवा ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेनेकी बात आयी है, तथा ४५ वें श्लोकमें अनेक जन्मोंकी बात भी आयी है। इसी प्रकार १३ वें अध्यायके २१ वें श्लोकमें पुरुषके सद्-असत् योनियोंमें जन्म लेनेकी बात कही गयी है। १४ वें अध्यायके १४-१५ तथा १८ वें श्लोकोंमें गुणोंके

अनुसार मनुष्यके उच्च, मध्यम तथा अधोगतिको प्राप्त होनेकी बात आयी है तथा १५ वें अध्यायके श्लोक ७-८ में एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जानेका स्पष्ट रूपमें उल्लेख हुआ है। १६ वें अध्यायके श्लोक १६, १९ और २० में भगवान्ने आसुरी सम्पदावालोंको बारंबार तिर्यग्-योनियों और नरकमें गिरानेकी बात कही है। इन सब प्रसङ्गोंसे भी पुनर्जन्म तथा परलोककी पुष्टि होती है।

योगसूत्रमें भी पुनर्जन्मका विषय आया है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।

(साधन० १२)

अर्थात् 'क्लेश* जिनकी जड़ है, वे कर्माशय (कर्मोंकी वासनाएँ) वर्तमान अथवा आगेके जन्मोंमें भोगे जा सकते हैं।'

उन वासनाओंका फल किस रूपसे मिलता है, इसके विषयमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

* योगशास्त्रमें अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (मृत्युभय)—इनको 'क्लेश' नामसे कहा गया है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।

(साधन० १३)

अर्थात् 'क्लेशरूपी कारणके रहते हुए उन वासनाओंका फल जाति (योनि), आयु (जीवनकी अवधि) और भोग (सुख-दुःख) होते हैं ।'

मनुस्मृतिमें भी पुनर्जन्मके प्रतिपादक अनेकों वचन मिलते हैं । उनमेंसे कुछ चुने हुए वचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं । किन-किन कर्मोंसे जीव किन-किन योनियोंको प्राप्त होते हैं, इस विषयमें भगवान् मनु कहते हैं —

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषां त्रिविधा गतिः ॥

(१२ । ४०)

अर्थात् 'सत्त्वगुणी लोग देवयोनिको, रजोगुणी मनुष्ययोनिको और तमोगुणी तिर्यग्योनिको प्राप्त होते हैं । जीवोंकी सदा यही तीन प्रकारकी गति होती है ।'

'जो लोग इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे रहते हैं तथा धर्माचरणसे विमुख रहते हैं, उनके विषयमें भगवान् मनु कहते हैं कि वे मूर्ख और नीच मनुष्य

मरनेपर निन्दित गतिको पाते हैं ।'*

इसके आगे भगवान् मनु ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नी-गमन आदि कुछ महापातकोंका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इन पापोंको करनेवाले अनेक वर्षतक नरक भोगकर फिर नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं। उदाहरणतः ब्रह्महत्या करनेवाला कुत्ते, सूअर, गदहे, चाण्डाल आदि योनियोंको प्राप्त होता है; ब्राह्मण होकर मदिरा-पान करनेवाला कृमि-कीट-पतङ्गादि तथा हिंसक योनियोंमें जन्म लेता है; गुरुपत्नीगामी तृण, गुल्म, लता आदि स्थावर योनियोंमें सैकड़ों बार जन्म ग्रहण करता है तथा अभक्ष्य-भक्षण करनेवाला कृमि होता है।†

इस प्रकार परलोक एवं पुनर्जन्मके प्रतिपादक अनेकों प्रमाण शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं। उनको कहाँतक लिखा जाय। अब हम युक्तियोंसे भी परलोक एवं पुनर्जन्मको सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं—

---

* इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान् संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥

(१२ । ५२)

† देखिये मनुस्मृति १२ । ५४–५६, ५८, ५९ ।

(१) शरीरकी तरह आत्माका परिवर्तन नहीं होता। शरीरमें तो हम सभीके अवस्थानुसार परिवर्तन होता देखा जाता है। आज जो हमारा शरीर है कुछ वर्ष बाद वह बिल्कुल बदल जायगा, उसके स्थानमें दूसरा ही शरीर बन जायगा—जैसे नख और केश पहलेके कटते जाते हैं और नये आते रहते हैं। बाल्यावस्थामें हमारे सभी अङ्ग कोमल और छोटे होते हैं, कद छोटा होता है, स्वर मीठा होता है, वजन भी कम होता है तथा मुखपर रोएँ नहीं होते। जवान होनेपर हमारे अङ्ग पहलेसे कठोर और बड़े हो जाते हैं, आवाज भारी हो जाती है, कद लंबा हो जाता है, वजन बढ़ जाता है तथा दाढ़ी-मूँछ आ जाती है। इसी प्रकार बुढ़ापेमें हमारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, चमड़ा ढीला पड़ जाता है, बाल पक जाते हैं, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिर जाते हैं एवं शरीर तथा इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि बालकपनमें देखे हुए किसी व्यक्तिको उसके युवा हो जानेपर हम सहसा नहीं पहचान पाते। परंतु शरीर बदल जानेपर भी हमारा आत्मा नहीं बदलता। दस वर्ष पहले जो

हमारा आत्मा था, वही आत्मा इस समय भी है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि होता तो आजसे दस वर्ष अथवा बीस वर्ष पहले हमारे जीवनमें घटी हुई घटनाका हमें स्मरण नहीं होता। दूसरेके द्वारा अनुभव किये हुए सुख-दुःखका जिस प्रकार हमें स्मरण नहीं होता, उसी प्रकार यदि हमारा आत्मा बदल गया होता तो हमें अपने जीवनकी बातोंका भी कालान्तरमें स्मरण नहीं रहता। परंतु आजकी घटनाका हमें दस वर्ष बाद अथवा बीस वर्ष बाद भी स्मरण होता है, इससे मालूम होता है कि अनुभव करनेवाला और स्मरण करनेवाला दो व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ही व्यक्ति है। जिस प्रकार वर्तमान शरीरमें इतना परिवर्तन होनेपर भी आत्मा नहीं बदला, उसी प्रकार मरनेके बाद दूसरा शरीर मिलनेपर भी यह नहीं बदलनेका। इससे आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(२) मनुष्य अपना अभाव कभी नहीं देखता, वह यह कभी नहीं सोचता कि एक दिन मैं नहीं रहूँगा, अथवा मैं पहले नहीं था। अपने अभावके बारेमें आत्माकी ओरसे उसे कभी गवाही नहीं मिलती। वह यही सोचता है कि मैं सदासे हूँ और सदा रहूँगा। इससे भी आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(३) बालक जन्मते ही रोने लगता है और जन्मनेके बाद कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सोता है, जब माता उसके मुखमें स्तन देती है, तो वह उसमेंसे दूध खींचने लगता है और धमकाने आदिपर भयसे काँपता हुआ भी देखा जाता है। बालकके ये सब आचरण पूर्वजन्मका लक्ष्य कराते हैं, क्योंकि इस जन्ममें तो उसने ये सब बातें सीखी नहीं। पूर्वजन्मके अभ्याससे ही ये सब बातें उसके अंदर स्वाभाविक ही होने लगती हैं। पूर्वजन्ममें अनुभव किये हुए सुख-दुःखका स्मरण करके ही वह हँसता और रोता है, पूर्वमें अनुभव किये हुए मृत्युभयके कारण ही वह काँपने लगता है तथा पूर्वजन्ममें किये हुए स्तनपानके अभ्याससे ही वह माताके स्तनका दूध खींचने लगता है।

(४) जीवोंमें जो सुख-दुःखका भेद, प्रकृति अर्थात् स्वभाव और गुण-कर्मका भेद—काम, क्रोध, राग-द्वेष आदिकी न्यूनाधिकता—तथा क्रियाका भेद एवं बुद्धिका भेद दृष्टिगोचर होता है, उससे भी पूर्वजन्मकी सिद्धि होती है। एक ही माता-पितासे उत्पन्न हुई संतान—यहाँतक कि एक ही साथ पैदा हुए बच्चे

भी इन सब बातोंमें एक दूसरेसे विलक्षण पाये जाते हैं। पूर्वजन्मके संस्कारोंके अतिरिक्ति इस विचित्रतामें कोई हेतु नहीं हो सकता। जिस प्रकार ग्रामोफोनकी चूड़ीपर उतरे हुए किसी गानेको सुनकर हम यह अनुमान करते हैं कि इसी प्रकार किसी मनुष्यने इस गानेको कहीं अन्यत्र गाया होगा, तभी उसकी प्रतिध्वनिको आज हम इस रूपमें सुन पाते हैं, इसी प्रकार आज हम किसीको सुखी अथवा दुखी देखते हैं अथवा अच्छे-बुरे स्वभाव और बुद्धिवाला पाते हैं तो उससे यही अनुमान होता है कि उसने पूर्वजन्ममें वैसे ही कर्म किये होंगे, जिनके संस्कार उसके अन्तःकरणमें संगृहीत हैं, जिन्हें वह अपने साथ लेता आया है। यदि किसीको वर्तमान जीवनमें हम सुखी पाते हैं तो इसका मतलब यही है कि उसने पूर्वजन्ममें अच्छे कर्म किये होंगे और दुखी पाते हैं तो इसका मतलब यह होता है कि उसने पूर्वजन्ममें अशुभ कर्म किये होंगे। यही बात स्वभाव, गुण और बुद्धि आदिके सम्बन्धमें समझनी चाहिये।

यदि कोई कहे कि संस्कारोंके भेदके लिये पूर्व-जन्मको माननेकी क्या आवश्यकता है, ईश्वरकी

इच्छाको ही इसमें हेतु क्यों न मान लिया जाय, तो इसका उत्तर यह है कि इस वैचित्र्यका कारण ईश्वरको माननेसे उनमें वैषम्य एवं नैर्घृण्य (निर्दयता) का दोष आवेगा। वैषम्यका दोष तो इस बातको लेकर आवेगा कि उन्होंने अपने मनसे किसीको सुखी और किसीको दुखी बनाया और निर्दयताका दोष इसलिये आवेगा कि उन्होंने कुछ जीवोंको बेमतलब ही दुखी बना दिया। ईश्वरमें कोई दोष घट नहीं सकता, इसलिये पूर्वकृत कर्मोंको ही लोगोंके स्वभावके भेद तथा भोगके वैषम्यमें हेतु मानना पड़ेगा।

इन सब युक्तियोंसे यह सिद्ध होता है कि प्राणियोंका पुनर्जन्म होता है। अब जब यह सिद्ध हो गया कि पुनर्जन्म होता है तब दूसरा प्रश्न यह होता है कि ऐसी स्थितिमें मनुष्यको क्या करना चाहिये। विचार करनेपर मालूम होता है कि शाश्वत एवं निरतिशय सुखकी प्राप्ति तथा दुःखोंसे सदाके लिये छुटकारा पा जाना ही जीवमात्रका ध्येय है और उसीके लिये मनुष्यको यत्नवान् होना चाहिये। शास्त्रोंमें पुनर्जन्मको ही दुःखका घर बतलाया है और परमात्माकी प्राप्ति

ही इस दुःखसे छूटनेका एकमात्र उपाय है। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

> मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
> नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
> (८।१५)

'परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर एवं क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते।'

इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्माकी प्राप्ति ही दुःखोंसे सदाके लिये छूटनेका एकमात्र उपाय है और यह मनुष्य-जन्ममें ही सम्भव है, अतः जो इस जन्मको पाकर परमात्माको प्राप्त कर लेते हैं, वे ही संसारमें धन्य हैं और वे ही बुद्धिमान् एवं चतुर हैं। मनुष्य-जन्मको पाकर जो इसे विषय-भोगमें ही गँवा देते हैं, वे अत्यन्त जड़मति हैं और शास्त्रोंने उनको कृतघ्न एवं आत्महत्यारा बतलाया है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् उद्धवसे कहते हैं—

> नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
> प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥
(११ । २० । १७)

'यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका आदिकारण तथा अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी ईश्वरकी कृपासे हमारे लिये सुलभ हो गया है; वह इस संसार-रूपी समुद्रसे पार होनेके लिये सुदृढ़ नौका है, जिसे गुरुरूप नाविक चलाता है और मैं (श्रीकृष्ण) वायुरूप होकर उसे आगे बढ़ानेमें सहायता देता हूँ। ऐसी सुन्दर नौकाको पाकर भी जो मनुष्य इस भवसागरको नहीं तरता वह निश्चय ही आत्माका हनन करनेवाला अर्थात् पतन करनेवाला है।'

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥
(रामचरित० उत्तर० ४४)

यहाँ यह प्रश्न होता है कि इसके लिये हमें क्या करना चाहिये। इसका उत्तर हमें स्वयं भगवान्‌के शब्दोंमें इस प्रकार मिलता है। वे कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
(गीता ६ । ५)

'मनुष्यको चाहिये कि वह अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले ।'

उद्धारका अर्थ है उत्तम गुणों एवं उत्तम भावोंका संग्रह एवं उत्तम आचरणोंका अनुष्ठान, और पतनका अर्थ है दुर्गुण एवं दुराचारोंका ग्रहण; क्योंकि इन्हींसे क्रमशः मनुष्यकी उत्तम एवं अधम गति होती है । इन्हींका भगवान्ने क्रमशः दैवी सम्पत्ति एवं आसुरी सम्पत्तिके नामसे गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णन किया है और यह भी बतलाया है कि दैवी सम्पत्ति मोक्षकी ओर ले जानेवाली है—'दैवीसम्पद्विमोक्षाय' और आसुरी सम्पत्ति बाँधनेवाली अर्थात् बार-बार संसार-चक्रमें गिरानेवाली है—'निबन्धायासुरी मता ।' यही नहीं आसुरी सम्पदावालोंके आचरणोंका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि 'उन अशुभ आचरणवाले द्वेषी, क्रूर (निर्दय) एवं मनुष्योंमें अधम पुरुषोंको मैं संसारमें बार-बार पशु-पक्षी आदि तिर्यग् योनियोंमें गिराता हूँ और जन्म-जन्ममें उन योनियोंको प्राप्त हुए

वे मूढ़ पुरुष मुझे न पाकर उससे भी अधम गति (घोर नरकों) को प्राप्त होते हैं।' * इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तम गुण, भाव और आचरण ही ग्रहण करने योग्य हैं और दुर्गुण, दुर्भाव तथा दुराचार त्यागने योग्य हैं। गीताके १३वें अध्यायके ७वेंसे ११वें श्लोकतक भगवान्‌ने इन्हींका ज्ञान और अज्ञानके नामसे वर्णन किया है। ज्ञानके नामसे वहाँ जिन गुणोंका वर्णन किया गया है, वे आत्माका उद्धार करनेवाले—ऊपर उठानेवाले हैं और इससे विपरीत जो अज्ञान है—'अज्ञानं यदतोऽन्यथा,' वह गिरानेवाला—पतन करनेवाला है।

सद्‌गुण और सदाचार कौन हैं तथा दुर्गुण एवं दुराचार कौन-से हैं, ग्रहण करने योग्य आचरण कौन हैं तथा त्यागनेयोग्य कौन-से हैं—इसका निर्णय हम

---

* तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(१६। १९-२०)

शास्त्रोंद्वारा ही कर सकते हैं। शास्त्र ही इस विषयमें प्रमाण हैं। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(१६। २४)

'इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है; ऐसा जानकर तू शास्त्रविधिसे नियतकर्म ही करने योग्य है।'

यदि नाना प्रकारके शास्त्रोंको देखनेसे तथा उनमें कहीं-कहीं आये हुए परस्परविरोधी वाक्योंको पढ़नेसे बुद्धि भ्रमित हो जाय और शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यका निर्णय न कर सके तो पूर्वकालमें हमारी दृष्टिमें शास्त्रके मर्मको जाननेवाले जो भी महापुरुष हो गये हों उनके बतलाये हुए मार्गका अनुसरण करना चाहिये। शास्त्रोंकी भी यही आज्ञा है। महाभारतकार कहते हैं—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥
(वन० ३१३। ११७)

'धर्मके विषयमें तर्ककी कोई प्रतिष्ठा (स्थिरता) नहीं, श्रुतियाँ भिन्न-भिन्न तात्पर्यवाली हैं तथा ऋषि-मुनि भी कोई एक नहीं हुआ है, जिससे उसीके मतको प्रमाणस्वरूप माना जाय, धर्मका तत्त्व गुहामें छिपा हुआ है, अर्थात् धर्मकी गति अत्यन्त गहन है, इसलिये (मेरी समझमें) जिस मार्गसे कोई महापुरुष गया हो, वही मार्ग है अर्थात् ऐसे महापुरुषका अनुकरण करना ही धर्म है।' उन्हींके आचरणको अपना आदर्श बना लेना चाहिये और उसीके अनुसार चलनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

यदि किसीको ऐसे महापुरुषोंके मार्गमें भी संशय हो तो फिर उसे यही उचित है कि वह वर्तमानकालके किसी जीवित सदाचारी महात्मा पुरुषको—जिसमें भी उसकी श्रद्धा हो और जिसे वह श्रेष्ठ महापुरुष समझता हो—अपना आदर्श बना ले और उनके बतलाये हुए मार्गको ग्रहण करे, उनके आदेशके अनुसार चले। और यदि किसीपर भी विश्वास न हो तो अपने अन्तरात्मा, अपनी बुद्धिको ही पथप्रदर्शक बना ले—एकान्तमें बैठकर विवेक-वैराग्ययुक्त बुद्धिसे शान्ति एवं धीरजके साथ स्वार्थत्यागपूर्वक निष्पक्षभावसे विचार

करे कि मेरा ध्येय क्या है ? मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये ? इस प्रकार अपने हिताहितका विचार करके संसारमें कौन-सी वस्तु मेरे लिये ग्राह्य है और कौन-सी अग्राह्य है ? इसका निर्णय कर ले और फिर दृढ़तापूर्वक इस निश्चयपर स्थित हो जाय । जो मार्ग उसे ठीक मालूम हो, उसपर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो जाय और जो आचरण उसे निषिद्ध जँचे, उन्हें छोड़नेकी प्राणपणसे चेष्टा करे, भूलकर भी उस ओर न जाय । इस प्रकार निष्पक्षभावसे विचार करनेपर, अन्तरात्मासे पूछनेपर भी उसे भीतरसे यही उत्तर मिलेगा कि अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और परोपकार आदि ही श्रेष्ठ हैं । हिंसा, असत्य, व्यभिचार और दूसरेका अनिष्ट आदि करनेके लिये उसका अन्तरात्मा उसे कभी न कहेगा । नास्तिक-से-नास्तिकको भी भीतरसे यही आवाज सुनायी देगी । इस प्रकार अपना लक्ष्य स्थिर कर लेनेके बाद फिर कभी उसके विपरीत आचरण न करे । अच्छी प्रकार निर्धारित किये हुए अपने ध्येयके अनुसार चलना ही आत्माका उत्थान करना है और उस निश्चयके अनुसार न चलकर उसके विपरीत मार्गपर चलना ही उसका पतन

है। जो आचरण अपनी दृष्टिमें तथा दूसरोंकी दृष्टिमें भी हेय है, उसे जान-बूझकर करना मानो अपने-आप ही फाँसी लगाकर मरना, अपने ही पैरोंपर कुल्हाड़ी मारना, अपने ही हाथों अपना अहित करना है। इसीलिये भगवान् कहते हैं—'नात्मानमवसादयेत्' (गीता ६।५), जान-बूझकर अपने-आप अपना पतन न करे।

हमारे शास्त्रोंमें मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले कुछ दोष गिनाये हैं। और साथ ही मन, वाणी और शरीरके पाँच-पाँच तप भी बतलाये हैं। आत्माका उद्धार चाहनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह उपर्युक्त मन, वाणी और शरीरके दोषोंका त्याग करे और शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक—तीनों प्रकारके तपका आचरण करे। शरीरसे होनेवाले दोष तीन हैं—बिना दिया हुआ धन लेना, शास्त्रविरुद्ध हिंसा और परस्त्रीगमन।* वाचिक पाप चार हैं—कठोर वचन कहना, झूठ बोलना, चुगली करना और

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
(मनु० १२।७)

बेसिर-पैरका ऊलजलूल बातें करना।* मानसिक पाप तीन हैं— दूसरेका माल मारनेका दाँव सोचना, मनसे दूसरेका अनिष्टचिन्तन करना और मैं शरीर हूँ—इस प्रकारका झूठा अभिमान करना।†

इन त्रिविध पापोंका नाश करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें तीन प्रकारके तप बतलाये हैं—शारीरिक तप, वाचिक तप और मानस तप। उक्त तीन प्रकारके तपका स्वरूप भगवान्ने इस प्रकार बतलाया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १४)

'देवता, ब्राह्मण, गुरु (माता-पिता एवं आचार्य आदि) और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता,

---

* पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
(मनु० १२। ६)

† परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥
(मनु० १२। ५)

ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है ।'

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
(गीता १७ । १५)

'जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है ।'

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥
(गीता १७ । १६)

'मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणकी पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है ।'

प्रत्येक कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि वह

उपर्युक्त तीनों प्रकारके तपका सात्त्विक* भावसे अभ्यास करे।

अन्तमें हम एक बात और कहकर इस लेखको समाप्त करते हैं। दुःखरूप संसारसे छूटनेका एक सर्वोत्तम उपाय है—परमात्माकी शरण लेकर विवेक और वैराग्ययुक्त बुद्धिसे दुःख, शोक, भय और चिन्ताका त्याग। इसपर यदि कोई कहे कि दुःख-सुख तो प्रारब्धके अनुसार भोगने ही पड़ते हैं, तो इसका उत्तर यह है, दुःख-सुखके निमित्तोंका प्राप्त होना और हट जाना ही प्रारब्धका फल है, उन निमित्तोंको लेकर हमें जो चिन्ता, शोक, भय एवं विषाद होता है वह हमारी मूर्खतासे होता है, अज्ञानसे होता है। उनके होनेमें प्रारब्ध हेतु नहीं है। पुत्रका वियोग हो जाना, धनका अपहरण हो जाना, व्यापारमें घाटा लग जाना, इज्जत-आबरूका चला जाना, बीमारी और

---

* श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥
(गीता १७। १७)

'फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं।'

अपकीर्तिका होना—ये सब घटनाएँ प्रारब्धके कारण होती हैं, परंतु इनसे जो हमें विषाद होता है, उसमें हमारा अज्ञान हेतु है, प्रारब्ध नहीं। यदि हम स्वयं इन घटनाओंसे दुखी न हों, तो इन घटनाओंकी ताकत नहीं कि वे हमें दुखी कर सकें। यदि इन घटनाओंमें दुखी करनेकी शक्ति होती तो उनसे ज्ञानियोंको भी दुःख होता, परंतु ज्ञानी जीवन्मुक्त महापुरुषोंके लिये शास्त्र डंकेकी चोट यह कहते हैं कि उन्हें अप्रिय-से-अप्रिय घटनाको लेकर भी दुःख नहीं होता, वे सुख-दुःखसे परे हो जाते हैं। उनकी दृष्टिमें प्रिय-अप्रिय कुछ रह नहीं जाता। उनके विषयमें श्रुति कहती है—'तरति शोकमात्मवित्।' (छा० ७। १। ३) आत्माको जान लेनेवाला शोकसे तर जाता है। 'हर्ष-शोकौ जहाति' (कठ० १। २। १२)—ज्ञानी पुरुष हर्ष और शोकको त्याग कर देता है, दोनों ही स्थितियों-को लाँघ जाता है। 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्व-मनुपश्यतः' (ईश० ७)—सर्वत्र एक परमात्माको ही देखनेवाले आत्मदर्शी पुरुषके लिये शोक और मोहका कोई कारण नहीं रह जाता। भगवान् भी गीतामें अर्जुनसे अपने उपदेशके प्रारम्भमें ही कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥
(२ । ११)

'हे अर्जुन ! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है, परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते ।'

इससे यह सिद्ध होता है कि शोक न करना हमारे हाथमें है । यदि ऐसी बात न होती और इसका सम्बन्ध प्रारब्धसे होता, तो ज्ञानोत्तर-कालमें ज्ञानीको भी शोक होता और भगवान् भी शोक छोड़नेके लिये अर्जुनको कभी न कहते । शरीरोंका उत्पत्ति-विनाश और क्षय-वृद्धि तथा सांसारिक पदार्थोंका संयोग-वियोग ही प्रारब्धसे सम्बन्ध रखता है; उनके विषयमें जो चिन्ता, भय और शोक होता है वह अज्ञानके कारण ही होता है । सांसारिक विपत्तिके आनेपर भी जो शोक नहीं करते—रोते नहीं, उनकी उससे कोई हानि नहीं होती । अतः परमात्माकी शरण ग्रहण करके प्रमाद, आलस्य, पाप, भोग, शोक-मोह, विषाद, चिन्ता एवं भयका त्याग कर हमें परमात्माके स्वरूपमें अचल भावसे स्थित हो जाना चाहिये ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

(गीता ८ । १५)

भगवान् कहते हैं—'परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर एवं क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते ।'